1969G Significance of Paramanand Stotra

Shraman Sanskrati and Stavan Sahitya mein Paramanand stotra ka Sthan (In Sanmati Sandesh, March 1969)

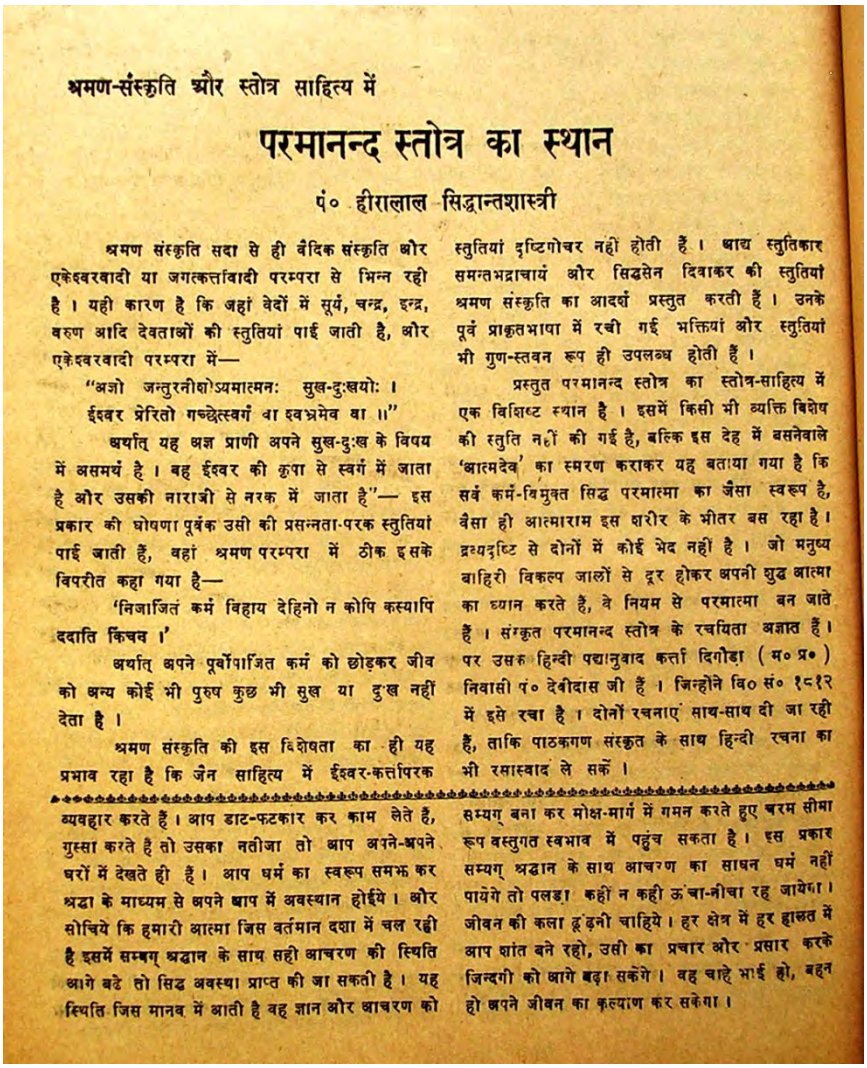

श्रमण-संस्कृति और स्तोत्र साहित्य में

परमानन्द स्तोत्र का स्थान

पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

श्रमण संस्कृति सदा से ही वैदिक संस्कृति और एकेश्वरवादी या जगत्कर्त्तावादी परम्परा से भिन्न रही है। यही कारण है कि जहां वेदों में सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण आदि देवताओं की स्तुतियां पाई जाती है, और एकेश्वरवादी परम्परा में—

"अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुख-दुःखयोः।
ईश्वर प्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा॥"

अर्थात् यह अज्ञ प्राणी अपने सुख-दुःख के विषय में असमर्थ है। वह ईश्वर की कृपा से स्वर्ग में जाता है और उसकी नाराजी से नरक में जाता है"— इस प्रकार की घोषणा पूर्वक उसी की प्रसन्नता-परक स्तुतियां पाई जाती हैं, वहां श्रमण परम्परा में ठीक इसके विपरीत कहा गया है—

'निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो न कोपि कस्यापि ददाति किंचन।'

अर्थात् अपने पूर्वोपार्जित कर्म को छोड़कर जीव को अन्य कोई भी पुरुष कुछ भी सुख या दुःख नहीं देता है।

श्रमण संस्कृति की इस विशेषता का ही यह प्रभाव रहा है कि जैन साहित्य में ईश्वर-कर्त्तापरक स्तुतियां दृष्टिगोचर नहीं होती हैं। आद्य स्तुतिकार समन्तभद्राचार्य और सिद्धसेन दिवाकर की स्तुतियां श्रमण संस्कृति का आदर्श प्रस्तुत करती हैं। उनके पूर्व प्राकृतभाषा में रची गई भक्तियां और स्तुतियां भी गुण-स्तवन रूप ही उपलब्ध होती हैं।

प्रस्तुत परमानन्द स्तोत्र का स्तोत्र-साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। इसमें किसी भी व्यक्ति विशेष की स्तुति नहीं की गई है, बल्कि इस देह में बसनेवाले 'आत्मदेव' का स्मरण कराकर यह बताया गया है कि सर्व कर्म-विमुक्त सिद्ध परमात्मा का जैसा स्वरूप है, वैसा ही आत्माराम इस शरीर के भीतर बस रहा है। द्रव्यदृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं है। जो मनुष्य बाहिरी विकल्प जालों से दूर होकर अपनी शुद्ध आत्मा का ध्यान करते हैं, वे नियम से परमात्मा बन जाते हैं। संस्कृत परमानन्द स्तोत्र के रचयिता अज्ञात हैं। पर उसके हिन्दी पद्यानुवाद कर्त्ता दिगौड़ा (म० प्र०) निवासी पं० देवीदास जी हैं। जिन्होंने वि० सं० १८१२ में इसे रचा है। दोनों रचनाएं साथ-साथ दी जा रही हैं, ताकि पाठकगण संस्कृत के साथ हिन्दी रचना का भी रसास्वाद ले सकें।

व्यवहार करते हैं। आप डाट-फटकार कर काम लेते हैं, गुस्सा करते हैं तो उसका नतीजा तो आप अपने-अपने घरों में देखते ही हैं। आप धर्म का स्वरूप समझ कर श्रद्धा के माध्यम से अपने आप में अवस्थान होईये। और सोचिये कि हमारी आत्मा जिस वर्तमान दशा में चल रही है इसमें सम्यग् श्रद्धान के साथ सही आचरण की स्थिति आगे बढ़े तो सिद्ध अवस्था प्राप्त की जा सकती है। यह स्थिति जिस मानव में आती है वह ज्ञान और आचरण को सम्यग् बना कर मोक्ष-मार्ग में गमन करते हुए चरम सीमा रूप वस्तुगत स्वभाव में पहुंच सकता है। इस प्रकार सम्यग् श्रद्धान के साथ आचरण का साधन धर्म नहीं पायेंगे तो पलड़ा कहीं न कहीं ऊंचा-नीचा रह जायेगा। जीवन की कला ढूंढनी चाहिये। हर क्षेत्र में हर हालत में आप शांत बने रहो, उसी का प्रचार और प्रसार करके जिन्दगी को आगे बढ़ा सकेंगे। वह चाहे भाई हो, बहन हो अपने जीवन का कल्याण कर सकेगा।

संस्कृत

१

परमानन्दसंयुक्तं निर्विकारं निरामयम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति निजदेहे व्यवस्थितम् ॥

२

अनंत सुख सम्पन्न, ज्ञानामृत पयोधरम् ।
अनंतवीर्य सम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः ॥

३

निर्विकारं निराबाधं सर्वसंग विवर्जितम् ।
परमानन्द सम्पन्नं, शुद्ध चैतन्य लक्षणम् ॥

४

उत्तमा स्वात्म चिन्ता स्यान्मोह चिन्ता च मध्यमा ।
अधमा काम चिन्ता स्यात् परचिन्ताऽधमाऽधमा ॥

५

निर्विकल्प समुत्पन्नं ज्ञानमेव सुधा रसम् ।
विवेकमंजलि कृत्वा तत्पिबन्ति तपस्विनः ॥

६

सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः ।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्द कारणम् ॥

७

नलिन्यां च यथानीरं भिन्नं तिष्ठति सर्वदा ।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः ॥

८

द्रव्य कर्म मलैर्मुक्तं भाव कर्म विवर्जितम् ।
नो कर्म रहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः ।

९

आनन्दं ब्रह्मणोरूपं, निज देहे व्यवस्थितम् ।
ध्यान हीना न पश्यन्ति जात्यन्धा इव भास्करम् ॥

१०

तद्ध्यानं क्रियते भव्यैं मनो येव विलीयते ।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिचमत्कार लक्षणम् ॥

११

ये ध्यान शीलामुनयः प्रधावास्ते दुःखहीवा नियमाद् भवन्ति
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्वं, व्रजन्ति मोक्ष क्षणमेकमेव ॥

हिन्दी पद्य

१

चेतन सदा सहित आनन्द, निर्विकार निर्गंद निर्द्वन्द ।
ध्यान-हीन तसुसूझत नांहि, अप्पा आपु यही घट मांहि ॥

२

सुख सागर अनन्तमयज्ञान, अरू अनन्त बलवीर जवान ।
दर्शन सहित अनंत सुधामु, इह विधि अलख आत्मराम ॥

३

निरविकार निरबाध अभंग, अन्तर बाहि जकै निरसंग ।
आनन्दमई सदा अविरुद्ध, येचेतनि लछन कहि शुद्ध ॥

४

चिन्तत नर उत्तम आत्त मैं, मध्यम मगन मोह गात मैं ।
अधम चितवत हैं नित काम, महा अधम चितत परधाम ॥

५

कलप रहित अमृत रस ज्ञान, धरि विवेक अंजुल परवांन ।
पीवत ताहि मुनीश्वर जांन, पावत पद अविचल निर्बाण ॥

६

आनन्दमयी सदा यह जीव, जानत ते बुध कहे सदीव ।
सो सरद है आतमाराम, कारण परमानन्द सु ताम ॥

७

जो नलनी अल के संग रीत, जलतैं रहित निरंतर तीत ।
ज्यौं घट बसै आत्मा चिन्ह, निर्मल रहै देह तैं भिन्न ॥

८

दर्व कर्म तै न्यारो हंस, भाव कर्म विनुवर निरवंश ।
अरूनो कर्म रहित शिवगाम, निश्चयरीत आत्माराम ॥

९

आनन्दमयी ब्रह्मगुण कूप निज तन मांहि विराजत भूप ।
ध्यानहीन किमलरैव, अजान, जैसे अन्धे न जानै भांन ॥

१०

ध्यान धरत भविजन दिढ़काय, ध्यान मांहि मन रहत समाय
लखि परब्रह्म करत निरधार लछन सकल आत्मासार ।

११

जे जिन धर्म सहित परधांन, करत हीन दुःख नियम प्रमांन ।
जे परचैं अप्पापस्ताय, स्वगुन विचार होहि सिवराय ॥

१२
आनन्दरूपं परमात्मतत्त्वं, समस्त संकल्प विकल्प मुक्तम् ।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यं जानाति योगी स्वयमेव अत्वम्

१३
चिदानंदमयं शुद्ध, निराकार निरामयम् ।
अनंत सुख सम्पन्नं सर्वसंग विवर्जितम् ॥

१४
लोक मात्र प्रमाणोऽयं, निश्चये नहि संशयः ।
व्यवहारे तनुमात्रोऽयं, कथितः परमेश्वरैः ॥

१५
यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं लक्षणं गत विभ्रमः ।
स्व स्वचित्तः स्थिरीभूत्वा निर्विकल्प समाधिना ॥

१६
स एव परमं ब्रह्म, स एव जिन पुंगवः ।
स एव परम तत्त्वं स एव परमो गुरुः ॥

१७
स एव परमं ज्योतिः स एव परमं तपः ।
स एव परमं ध्यानं स एव परमात्मनः ॥

१८
स एव सर्व कल्याणं स एव सुख भाजनम् ।
स एव शुद्ध चिद्रूप, स एव परमः शिवः ॥

१९
स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः ।
स एव पर चैतन्यं, स एव गुण सागरः ॥

२०
परमाल्हाद सम्पन्नं रागद्वेष विवर्जितम् ।
अहंन्तं देह मध्येतु योजानाति सः पण्डितः ॥

२१
आकार रहितं शुद्धं स्वस्वरूप व्यवस्थितम् ।
सिद्धमष्ट गुणोपेत निर्विकारं निरंजनम् ॥

२२
तत्सदृशं निजात्मानं प्रकाशाय महीयसे ।
सहजानन्द चैतन्यं, योजानाति सःपण्डितः ।

२३
पाषाणेषु यथा हेम दुग्ध मध्ये यथा घृतम् ।
तिल मध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः ॥

१२
आनन्दमयी आत्मायुक्त, सब संकल्प विकल्प विमुक्त ।
धरत सुभाव आप मैं आप, करत ध्यांन जोगीश्वर जाप ॥

१३
आनन्दमयी ज्ञान परवीन, निराकार निर्भय गद-हीन ।
सुख अनंत करि सहित सुपंथ, निर्मल निर्लोभी निर्ग्रन्थ ।

१४
निश्चय लोकमात्र जीय जांन, व्यवहारी स्वशरीर प्रमांन ।
इह विध भेद आत्मा भयो, जैसे श्री जिनवर वरनयो ॥

१५
जाछिन लख्यो आत्मा शुद्ध, ताछिन नसे कुभाव कुबुद्ध ।
जाछिन थिरहूं ब्रह्म आराधि, ताछिन मिटे सकल अपराध ।

१६
सोई परब्रह्म परधांन, सोई शिवरूपी भगवान् ।
सोई परम तत्त्वं निरधार, सोई महा परम गुण सार ॥

१७
सोई परम ज्योति परवीन सोई परम तपोधन लीन ।
सोई परम ध्यांनमय धीर, सोई परम आत्मा वीर ॥

१८
सोई सर्व करण कल्याण, सोई सुख भाजन दुःखहांन ।
सोई शुद्ध सदा पद शोक, सोई प्रगट आत्मा लोकः ॥

१९
सोई सहित परम आनन्द, सोई सुखदायक निरबद ।
सोई शुद्ध परम चैतन्ब, गुणसागर सोई पर भिन्न ॥

२०
देखत होत परम आल्हाद, रागदोष वर्जित बकवाद ।
निराकार शुद्ध सुअनूप सदा सहित निज सगुन स्वरूप ॥

२१
वसुगुण सहित सिद्ध सुखधाम, निराकार निरंजन राम ।
जा सम सकल आत्मा सार, जानत पण्डित भेद विचार ॥

२२
चेतन शुद्ध चिन्ह परवांन, केवल दर्शनि केवल ज्ञान ।
चेतन सहित परम आनन्द, चेतन जस भव प्रगट सुछद ॥

२३
पाहन में जैसे कनक दही दूध में घीव ।
तैल तिलो के मध्य है, त्यों शरीर में जीव ॥

(शेष पृष्ठ ८६५ पर)

(पृष्ठ ८५२ का शेष)

२४
काष्ठमध्ये यथावन्हिः, शक्ति रूपेण तिष्ठति ।
अयमात्मा शरीरेषु योजानाति स पाण्डितः ॥

२५
जैसे घट में आतमा, खोजै ध्यान लगाय ।
स्वपर भेद पर भिन्न कर, छेदि जगत शिव जाय ॥

२६
जहं जगरीति व भीति भय, हार जीत नहिं सोच ।
सिद्ध सरूपी आत्मा रहित अठारह दोष ।

२७
केवल दर्शन ज्ञानमय, केवल सुक्ख अनन्त ।
केवल शुद्ध स्वरूपमय, परम ब्रह्म निवसन्त ॥

२४
काठ मांहि ज्यो अग्नि है, प्रगट हो न दिखाय ।
यत्न युक्ति सों भिन्नता, खरी तेल हो जाय ॥

२८
परमानन्द पुनीत यह, अस्तुति भाषा कीव ।
पढ़ै गुणैं जे सरब हैं, करै करम मल छीन ॥

२९
देखि देखि असलोकमय, करे चौपाई बंध ।
संत सयानैं सरद हैं, अस्तुति परमानन्द ॥

३०
भिन्न-भिन्न को कहि सकै, ब्रह्मरूप गुणभास ।
अलप बुद्धिकरि अलपगुण, वरणै देवीदास ॥